[2013] 1 एस.सी.आर. 758

राजस्थान विश्वविद्यालय और अन्य

बनाम

प्रेम लता अग्रवाल (सिविल अपील संख्या 919 ऑफ़ 2013)

फ़रवरी 05, 2013

[के.एस. राधाकृष्णन और दीपक मिश्रा, जे.जे

सेवा कानून

धाराएँ 3(2) और (3) - पेंशन - तदर्थ प्रोफेसर/व्याख्याता - सेवा में बने रहे - पेंशन लाभ के लिए दावा - उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति – अभिनिर्धारित: प्रारंभिक नियुक्ति केवल उसमें निर्धारित अवधि की रक्षा करेगी - धारा 3(3) के तहत प्रदान की गई निश्चित अवधि के बाद सेवा को जारी नहीं रखा जा सकता था और इस तरह की निरंतरता को धारा 3(2) में नियोजित भाषा के संबंध में शून्य और शून्य माना जाएगा - विनियम किसी कर्मचारी को अपने दायरे में नहीं लेते हैं जो नियमित रूप से नियुक्त नहीं है - उच्च न्यायालय ने डीम्ड पुष्टिकरण के सिद्धांत को लागू किया है जो कि अस्वीकार्य है- उच्च न्यायालय का आदेश निरस्त किया गया - राजस्थान विश्वविद्यालय शिक्षक एवं अधिकारी (नियुक्ति के लिए चयन) अधिनियम, 1974 - विश्वविद्यालय पेंशन विनियम, 1990 - विनियम 2(i), 22 और 23 - सेवा कानून- पेंशन।

तत्काल अपीलों में प्रत्यर्थियों को राजस्थान विश्वविद्यालय शिक्षक एवं अधिकारी (नियुक्ति के लिए चयन) अधिनियम 1974 की धारा 3(3) के संदर्भ में तदर्थ सहायक प्रोफेसर/व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया था। । उनकी सेवाएं हर साल समाप्त कर दी जाती थीं और नए नियुक्ति आदेश जारी किए जाते थे और इस तरह, वे सेवानिवृत्ति की आयु तक बने रहते थे। इसके बाद उन्होंने पेंशन लाभ का दावा करते हुए रिट याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि विश्वविद्यालय पेंशन विनियम, 1990 के लागू होने के साथ, इस उद्देश्य के लिए उनके वेतन से कटोती की गई थी। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा रीट याचिकाएँ स्वीकार कर ली गई।विश्वविद्यालय द्वारा दायर विशेष अपील को उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने खारिज कर दिया।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने-

अभिनिर्धारित किया: 1.1. राजस्थान विश्वविद्यालयों के शिक्षक और अधिकारी (नियुक्ति के लिए चयन) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों को जब संयुक्त रूप से पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विधायिका ने नियुक्ति पर प्रतिबंध लगाया था, चयन समितियों के गठन का प्रावधान किया था और उक्त समितियों की प्रक्रिया का भी प्रावधान किया गया था। विधायिका का इरादा शिक्षकों को योग्यता के आधार पर नियुक्त करना है, पारदर्शिता, निष्पक्षता, निष्पक्षता और पूर्ण वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखते हुए। उपधारा (3) धारा 3 स्टॉप-गैप व्यवस्था की अनुमति देता है और

इसमें केवल छोटी अवधि वाले तदर्थ या अंशकालिक शिक्षक शामिल होते हैं। इसका उद्देश्य उस स्थिति से निपटने के उद्देश्य को पूरा करना है जहां कोई आपात स्थिति उत्पन्न होती है। प्रावधानों का एक उचित योजनाबद्ध विश्लेषण निरंतरता में बने रहने के लिए किसी भी प्रकार की तदर्थ नियुक्ति या अंशकालिक नियुक्ति की परिकल्पना नहीं करता है। कुछ प्रत्यर्थियों ने कुछ रुकावटों के साथ और न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण भी अपना काम जारी रखा। इसके अलावा, इस न्यायालय ने नियमितीकरण की उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया था। नियमित शिक्षकों और तदर्थ शिक्षकों या अंशकालिक शिक्षकों के बीच प्रावधानों में प्रयुक्त भाषा के कारण अंतर किया जाना चाहिए, जो कभी-कभी आकस्मिक परिस्थितियों के कारण और कभी-कभी न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण पद पर काम करना जारी रखते हैं। उनकी प्रारंभिक नियुक्ति को अधिनियम की धारा 3(3) के सीमित उद्देश्यों के लिए कानूनी माना जा सकता है। इससे केवल उसमें निर्धारित अवधि की सुरक्षा होगी। अधिनियम की धारा 3(3) के तहत निर्धारित अवधि के बाद की सेवा जारी नहीं रह सकती थी और अधिनियम की धारा 3(2) में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए ऐसी निरंतरता को अमान्य माना जाएगा।इस प्रकार अधिनियम, क्षेत्र में संचालित होता है। इसके अलावा, जैसा कि धारा 4 में प्रावधान है, चयन एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति द्वारा किया जाना आवश्यक था। [पैरा 22 और 33] [773-एफ-एच; 774-ए-एफ; 779-जी]

कश्मीर विश्वविद्यालय और अन्य बनाम डॉ. मोहम्मद यासीन और अन्य 1974 (2) एससीआर 154 = 1974 (3) एससीसी 546; अनुराधा मुखर्जी (श्रीमती) और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1996 (3) एससीआर 276 = 1996 (9) एससीसी 59; हरियाणा राज्य बनाम हरियाणा पशु चिकित्सा एवं एएचटीएस एसोसिएशन और अन्य 2000 (3) सप्लिमेंट। एससीआर 322 2000 (8) एससीसी 4; आर.एस. गर्ग बनाम यूपी राज्य और अन्य 2006 (4) पूरक। एससीआर 120= 2006 (6) एससीसी 430

1.2. उमा डेविस के मामले में संविधान पीठ ने अवैध नियुक्ति और अनियमित नियुक्ति के बीच अंतर किया। उमा देवी के पैराग्राफ 53 में दी गई सुरक्षा को मूल रूप से तीन कारणों से प्रत्यर्थियों तक नहीं बढ़ाया जा सकता, अर्थात्, (i) निश्चित अवधि के बाद नियुक्ति की निरंतरता कानून के संचालन द्वारा अमान्य थी; (ii) न्यायालय के हस्तक्षेप से प्रत्यर्थी पद पर बने रहे; और (iii) इस न्यायालय ने 1998 में उनकी सेवाओं को नियमित करने से इनकार कर दिया था। [पैरा 32 और 34] [779-डी-ई; 780-डी-ई]

सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी (3) और अन्य 2006 (3) एससीआर 953 2006 (4) एससीसी 1

1.3. विश्वविद्यालय पेंशन विनियम, 1990 ऐसे कर्मचारी को अपने

दायरे में नहीं लेता जो नियमित रूप से नियुक्त नहीं है। विनियम 2(i) स्पष्ट रूप से "विश्वविद्यालय की सेवा में नियमित रूप से नियुक्त" प्रदान करता है, जिसे विनियम 22 में पेंशन के लिए अर्हक सेवा की शर्तों को निर्धारित करते हुए दोहराया गया है। विनियम 23 मूलतः एक कर्मचारी की सेवा की अवधि की गणना से संबंधित है। इसके अलावा, विनियम 23(बी) में "यदि उसकी पुष्टि हो गई है" शब्दों का उपयोग किया गया है। यह सशर्त है और इसका संबंध स्थानापन्न सेवाओं से है। दोनों अवधारणाएँ का सेवा न्यायशास्त्र में उनका अपना महत्व है। प्रत्यर्थी स्थानापन्न सेवा में नहीं थे और कल्पना की कोई सीमा नहीं थी कि उन्हें पुष्ट माना जा सकता था क्योंकि "यदि उनकी पुष्टि की गई है" शब्दों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा एक सकारात्मक तथ्य की आवश्यकता होती है। उच्च न्यायालय ने मौजूदा मामले में डीम्ड कन्फर्मेशन के सिद्धांत को लागू किया है जो अस्वीकार्य है। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश निरस्त किये जाते हैं। [पैरा 36-38] [781-ई-एफ, जी-एच; 782-ए-सी]

हेड मास्टर, लॉरेंस स्कूल, लवडेल बनाम जयंती रघु और अन्य 2012 (2) एससीआर 492 2012 (4) एससीसी 793

एस.बी. पटवर्धन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य 1977 (3) एससीआर 775 =1977 एआईआर 2051; डी.एस. नकारा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1983 (2) डी एससीआर 165 = 1983 (1) एससीसी 305 उद्धृत।

केस कानून संदर्भ:

1977 (3) एससीआर 775	उद्धृत	पैरा 9
1983 (2) एससीआर 165	उद्धृत	पैरा 9
2006 (3) एससीआर 953	पर भरोसा	पैरा 9
1974 (2) एससीआर 154	पर भरोसा	पैरा 24
1996 (3) एससीआर 276	पर भरोसा	पैरा 25
2000 (3) सप्ल. एससीआर 322	पर भरोसा	पैरा 26
2006 (4) पूरक। एससीआर 120	पर भरोसा	पैरा 27
2012 (2) एससीआर 492	पर भरोसा	पैरा 37

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 919/2013

राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर खंडपीठ द्वारा विशेष अपील (रिट) संख्या 292।/ 2011 में निर्णय एवं आदेश दिनांक 15.09.2011 से उत्पन्न।

साथ में

सीए संख्या 920, 921, 922 और 923/2013

मनोज स्वरूप, ललिता कोहली, अभिषेक स्वरूप (मनोज स्वरूप एंड कंपनी), अपीलकर्ताओं की ओर से।

एस.के. केशोटे, डॉ. मनीष सिंघवी, एएजी, रश्मी सिंघानिया, सरद

कुमार सिंघानिया, अमित लुभाया, प्रगति नीखरा, अजय चौधरी, सुशील कुमार जैन, प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया-

दीपक मिश्रा, न्यायाधिपति.

1. सभी विशेष अनुमति याचिकाओं को अनुमति दी गई।

2. अपीलों के इस बैच में विचार के लिए जो विवाद उठता है, वह यह है कि क्या प्रत्यर्थी, जिन्हें शिक्षण पद अर्थात्, विभिन्न विषयों में सहायक प्रोफेसर/व्याख्याता पर नियुक्त किया गया था, और दो दशकों से अधिक समय तक इस पद पर बने रहे, वे, राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए विश्वविद्यालय पेंशन विनियम, 1990 (संक्षेप में "विनियम") के तहत पेंशन का लाभ पाने के हकदार होंगे, जो 1.1.1990 से लागू हुआ, विनियम 2 में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए, जो विनियम 22 और 23 के साथ पढ़े गए विनियमों का दायरा और अनुप्रयोग से संबंधित है, जो अर्हक सेवा की शर्तों और उस अवधि को निर्धारित करता है जिसे पेंशन के लिए गिना जाएगा, इस तथ्य के अलावा कि विश्वविद्यालय ने विनियम 3(5) में परिभाषित पेंशन फंड में योगदान स्वीकार कर लिया है, विश्वविद्यालय द्वारा रखे गए रुख के बावजूद कि प्रत्यर्थियों को राजस्थान विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और अधिकारियों (नियुक्ति के लिए चयन) अधिनियम, 1974 (संक्षिप्तता के लिए "अधिनियम" की धारा 3(3) में

निहित प्रावधानों के अनुसार नियमित रूप से प्रश्नगत पदों पर नियुक्त नहीं किया गया था और, इसलिए, विनियमों के तहत प्रदान किए गए लाभ के हकदार नहीं हैं।

3. ध्यान दें, जैसा कि मुख्य निर्णय प्रेम लता अग्रवाल के मामले में दिया गया था, हम उसमें बताए गए तथ्यों का उल्लेख करेंगे। हालाँकि, प्रत्येक प्रतिवादी के मामले में नियुक्ति की प्रारंभिक तारीखें और सेवानिवृत्ति की तारीखें, प्रश्नगत विवाद के परिसीमन में प्रासंगिक होगा। यहां प्रतिवादी प्रेम लता अग्रवाल, विजया काबरा, जानकी डी. मूरजानी, बीके जोशी और एमसी गोयल को 5.1.1981, 22.8.1984, 20.8.1985, 16.5.1978 और 5.8.1983 को नियुक्त किया गया था और क्रमशः 31.3.2001 31.8.2007, 30.6.2007, 31.1.2002 और 30.11.2007 को सेवानिवृत्त हुए। प्रतिवादी-प्रेम लता अग्रवाल और कुछ अन्य को कार्यालय आदेश दिनांक 5.1.1981 के तहत कुलपति द्वारा अधिनियम की धारा 3(3) के तहत स्टॉप गैप व्यवस्था करने के लिए निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए रसायन विज्ञान विषय में सहायक प्रोफेसर (व्याख्याता) के रूप में नियुक्त किया गया था। नियुक्ति पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि यह तदर्थ प्रकृति का है और यह वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंतिम कार्य दिवस तक या अगले आदेश तक, जो भी पहले हो, जारी रहेगा। प्रतिवादी और अन्य को समय-समय पर जारी नियुक्ति पत्रों के आधार पर बने रहने की अनुमति दी गई। गौरतलब है कि हर साल उनकी सेवाएं समाप्त कर नये नियुक्ति आदेश जारी

किये जाते थे, इस प्रकार, प्रतिवादी को 31.7.1988 तक बने रहने की अनुमति दी गई।

4. उस समय, तदर्थ शिक्षकों ने सेवाओं के नियमितीकरण के लिए परमादेश की मांग करते हुए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल किया था, लेकिन ऐसी राहत को अस्वीकार कर दिया गया था। 1991 की एसएलपी संख्या 18993 को प्राथमिकता दी गई थी जिसमें दो प्रश्न उठाए गए थे, अर्थात्, (i) क्या चयन समिति द्वारा अस्थायी रूप से नियुक्त किए जाने के लिए विधिवत चयनित व्याख्याता को अधिनियम के प्रावधानों के तहत विधिवत गठित चयन समिति द्वारा चयनित होने और विश्वविद्यालय के सिंडिकेट द्वारा अनुमोदित होने के बाद, स्वचालित रूप से उस पद पर पुष्टि की जानी चाहिए जिस पर वह पिछले 7 वर्षों से अस्थायी रूप से कार्यरत था।; और (ii) क्या चयन समिति द्वारा चयन के विचार के अलावा, पिछले 7 वर्षों से पढ़ा रहे एक व्याख्याता को उस पद पर बने रहने का अधिकार प्राप्त है। इस न्यायालय ने दिनांक 20 अप्रैल, 1992 के आदेश द्वारा उक्त विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया। हालाँकि विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई थी और नियमित होने के उनके अधिकार को इस न्यायालय ने स्वीकार नहीं किया था, फिर भी वे सेवा में बने रहे क्योंकि सम के आदेश लागू नहीं किए जा सके। यह ध्यान देने योग्य है कि तदर्थ नियुक्तियों द्वारा एक और याचिका 1985 में उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी जिसमें उन्होंने नियमित रूप से

नियुक्त सहायक व्याख्याताओं के साथ समानता के आधार पर समान वेतन का दावा किया था। उच्च न्यायालय ने दिनांक 1.3.1986 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

> "परिणामस्वरूप, इस विशेष अपील की अनुमति दी जाती है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.03.1995 को रद्द कर दिया जाता है और तदनुसार यह घोषित किया जाता है कि जिन अपीलकर्ताओं को संबंधित विभागों के कवर किए गए भार को कवर करने के लिए मानदेय के आधार पर नियुक्त किया गया है, आज से राजस्थान विश्वविद्यालय के नियमित नियुक्त व्याख्याता के न्यूनतम वेतनमान के समतुल्य वेतन के हकदार है। प्रतिवादियों को, कानून के अनुसार व्याख्याताओं के पद पर नियमित नियुक्ति होने तक अपीलकर्ताओं की सेवाएं बंद करने से भी रोका जाता है। प्रत्यर्थी अपीलकर्ताओं को वह काम सौंपने के लिए स्वतंत्र होंगे, जो नियमित रूप से नियुक्त व्याख्याताओं को सौंपा जाता है।"

5. उपरोक्त आदेश से दुःखी होकर विश्वविद्यालय ने विशेष अनुमति याचिका संख्या 13 of 1998 और काफी एसएलपी पेश की गई। जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"विशेष अनुमति याचिकाएं खारिज की जाती हैं। यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थियों की निरंतरता केवल नियमित चयन होने तक ही रहेगी और यह विश्वविद्यालय पर निर्भर है कि वह नियमित चयन करने के लिए शीघ्र कदम उठाए।"

6. उपरोक्त आदेश के आलोक में एवम् समय-समय पर पारित उच्च न्यायालय के विभिन्न आदेशों के कारण शिक्षकों को नियमित रूप से नियुक्त शिक्षकों के न्यूनतम वेतनमान के बराबर वेतन दिया गया तथा सेवा में जारी रखा गया। विश्वविद्यालय, अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, नियमित आधार पर रिक्त पदों को भरने के लिए राज्य सरकार की अनुमति प्राप्त नहीं कर सका क्योंकि विभिन्न चरणों में न्यायालय में विभिन्न मुकदमे चल रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी और उसके जैसे लोग सेवा में बने रहे।

7. यहां यह ध्यान रखना उचित है कि विश्वविद्यालय ने 1.1.1990 से लागू होने वाले नियमों को लागू किया। नियम लागू होने के बाद, प्रतिवादी ने पेंशन का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपना विकल्प दिया और उसके बाद, उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख, यानी 31.3.2001 तक नियमों के प्रावधानों के मद्देनजर उसके वेतन से कटौती की गई।

8. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि राजस्थान विश्वविद्यालय शिक्षक (अस्थायी शिक्षकों का समावेश) अध्यादेश, 2008 (2008 का 3)

लंबे समय से कार्यरत अस्थायी शिक्षकों के समावेश के उद्देश्य से राज्यपाल द्वारा बनाया और प्रख्यापित किया गया था। राजस्थान के विश्वविद्यालय. 12 जून, 2008 को उक्त विनियमों के अस्तित्व में आने के बाद, प्रतिवादी ने 2010 की रिट याचिका संख्या 2740 दायर की, जिसमें यह शिकायत दर्ज की गई कि सेवानिवृत्ति के बाद उसे पेंशन लाभ से वंचित कर दिया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने नियमों का हवाला दिया और इस तथ्य पर ध्यान दिया कि वह 20 साल की अवधि तक सेवा में रहीं और पेंशन देने के उनके विकल्प को विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर लिया था और ऐसी स्वीकृति के अनुसार उन्होंने अपना योगदान जमा कर दिया था और इसलिए विश्वविद्यालय को यह रुख अपनाने से रोक दिया गया कि वह 1990 के विनियमों के तहत पेंशन प्राप्त करने की हकदार नहीं थी। इसके अलावा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि सेवा की अवधि को ध्यान मे रखते हुए उनकी नियुक्ति की प्रकृति को तदर्थ और अस्थायी नहीं माना जा सकता है। इस विचार के चलते, उन्होंने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और निर्देश दिया कि औपचारिकताएं पूरी करने के बाद तीन महीने की अवधि के भीतर उसे पेंशन लाभ दिया जाए।

9. उपरोक्त आदेश से दुखी होकर, विश्वविद्यालय ने विशेष अपील (रिट) संख्या 292 of 2011 पेश की। डिवीजन बेंच ने तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और विभिन्न नियमों और अधिनियम के प्रावधानों का हवाला देते हुए कहा कि विश्वविद्यालय का रवैया पूरी तरह से अनुचित और

मनमाना था। डिवीजन बेंच का उक्त निष्कर्ष इस आधार पर आधारित था कि राजस्थान विश्वविद्यालयों की सेवा में किसी भी व्यक्ति को लंबे समय तक नियमित तरीके से नियुक्त नहीं करने में विश्वविद्यालय की ओर से चूक हुई थी; विश्वविद्यालय ने शिक्षकों को अपना विकल्प देने के लिए आमंत्रित किया था और उन्होंने पेंशन योजना में सीपीएफ में अपना योगदान जमा किया था; शिक्षकों की नियुक्तियाँ अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं थीं; और विनियमों के विनियम 23 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर उन्हें पुष्टिकृत माना गया। उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद, डिवीजन बेंच ने इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या शिक्षक नियमों के संदर्भ में पेंशन लाभ के हकदार थे और अंततः, नियमों की व्याख्या की और एसबी पटवर्धन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य [(1)], डीएस नकारा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य [(2)] और सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी [(3)] और अन्य मामले के पैराग्राफ 53 मे यह मत व्यक्त किया कि नियुक्तियाँ कानून की उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए की गईं और शिक्षकों को, मूल पदों के कैडर में नियुक्त होने के बाद, नियमों के तहत पेंशन लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है। व्यथित होकर, विश्वविद्यालय द्वारा विशेष अनुमति याचिकाओं के माध्यम से अपील की गई।

10. हमने अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री मनोज स्वरूप, 2011 की विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 35974 और 2012 की 18020 से संबंधित सिविल अपीलों में प्रत्यर्थियों के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री एसके

केशोटे, डॉ. मनीष सिंघवी, राज्य के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता, और को विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 33969 2011 और 20637 2012 सिविल अपील में प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान वकील श्री सुशील कुमार जैन को सुना गया।

11. इससे पहले कि हम उच्च न्यायालय के फैसले की रक्षात्मकता की जांच करने के लिए आगे बढ़ें, अधिनियम और विनियमों की योजना का सर्वेक्षण करना उचित है। अधिनियम की धारा 3(3), जैसा कि यह प्रासंगिक समय पर थी, अत्यधिक महत्व होने के कारण, यहां संपूर्ण रूप से पुनः प्रस्तुत की गई है: -

> “3. शिक्षकों एवं अधिकारियों की नियुक्तियों पर प्रतिबंध। - (1) प्रासंगिक कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ से, राजस्थान के किसी भी विश्वविद्यालय में किसी भी शिक्षक या अधिकारी को धारा 4 के तहत गठित चयन समिति की सिफारिशों के अलावा नियुक्त नहीं किया जाएगा।
>
> 2. उप-धारा (3) में अन्यथा प्रावधानित को छोड़कर, उप-धारा (1) के उल्लंघन में किसी भी विश्वविद्यालय में शिक्षक या अधिकारी की प्रत्येक नियुक्ति शून्य और शून्य होगी।
>
> 3. इसमें शामिल कोई भी बात एक वर्ष से अधिक की

अवधि के लिए स्टॉप-गैप व्यवस्था के रूप में एक अधिकारी या एक शिक्षक की नियुक्ति या अंशकालिक शिक्षक या क्रमशः व्याख्याता या सहायक रजिस्ट्रार से कम वेतनमान में एक शिक्षक या अधिकारी की नियुक्ति पर लागू नहीं होगी।

स्पष्टीकरण: उप-धारा (1) में "नियुक्त" शब्द का अर्थ प्रारंभ में नियुक्त माना जाएगा और पदोन्नति के माध्यम से नियुक्त नहीं मान जाएगा।”

12. प्रासंगिक समय पर धारा 4 चयन समितियों के गठन से संबंधित थी। इसे इस प्रकार पढ़ा गया:-

“4. चयन समितियों का गठन. – (1) किसी विश्वविद्यालय में शिक्षक या अधिकारी के प्रत्येक चयन के लिए निम्नलिखित से मिलकर एक समिति का गठन किया जाएगा: –

(i) संबंधित विश्वविद्यालय का कुलपति, जो समिति का अध्यक्ष होगा;

(ii) कुलाधिपति द्वारा एक वर्ष की अवधि के लिए नामांकित किया जाने वाला एक प्रख्यात शिक्षाविद्;

(iii) एक वर्ष की अवधि के लिए राज्य सरकार द्वारा नामित एक प्रख्यात शिक्षाविद्;

(iv) राज्य सरकार द्वारा एक वर्ष की अवधि के लिए नामित सिंडिकेट का एक सदस्य; और

(v) कॉलम 1 में उल्लिखित शिक्षकों और अधिकारियों के चयन के लिए अनुसूची के कॉलम 2 में निर्दिष्ट सदस्य के रूप में ऐसे अन्य व्यक्ति:

बशर्ते कि जहां किसी विश्वविद्यालय में कृषि संकाय में या किसी विश्वविद्यालय-कॉलेज में कृषि में मार्गदर्शन अनुसंधान का निर्देश देने वाले शिक्षक की नियुक्ति की जानी है, वहां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा अनुशंसित नाम के पैनल में से सिंडिकेट द्वारा नामित एक और विशेषज्ञ होगा।

बशर्ते कि इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी संकाय में शिक्षण पदों के लिए चयन समिति में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद द्वारा अनुशंसित नामों के पैनल में से सिंडिकेट द्वारा नामित एक विशेषज्ञ भी शामिल होगा।

(2) उपधारा (1) के खंड (ii) और खंड (iii) के तहत नामित प्रतिष्ठित शिक्षाविद् और उक्त उपधारा के खंड (iv) के

तहत नामित सिंडिकेट के सदस्य उनके नामांकन की तारीख से एक वर्ष के दौरान गठित प्रत्येक चयन समिति के सदस्य होंगे।:

बशर्ते कि उप-धारा (1) के खंड (ii), (iii) या (iv) के तहत नामित चयन समिति का सदस्य अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी प्रत्येक चयन समिति का सदस्य बना रहेगा जब तक, जैसा भी मामला हो, कुलाधिपति द्वारा या राज्य सरकार द्वारा नया नामांकन नहीं किया जाता है। हालांकि, चयन समिति के लिए ऐसे सदस्य का नया नामांकन उसके कार्यकाल की समाप्ति की तारीख से तीन महीने से अधिक की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(3) कोई भी व्यक्ति किसी एक वर्ष में किसी भी चयन समिति में विशेषज्ञ के रूप में नामांकित होने के लिए पात्र नहीं होगा यदि वह एक ही वर्ष के दौरान किन्हीं दो चयन समितियों का सदस्य रहा हो।

13. अधिनियम की धारा 5 नियुक्ति के समय चयन समिति की प्रक्रिया से संबंधित है। वह इस प्रकार थी:-

“5. चयन समिति की प्रक्रिया - (1) संबंधित विश्वविद्यालय का सिंडिकेट, नियमों के अनुसार, धारा 4 के तहत गठित

होने वाली चयन समिति की बैठक के लिए आवश्यक कोरम निर्धारित करेगा, जो प्रत्येक चयन समिति के सदस्यों के आधे से कम नहीं होगा।.

(2) चयन समिति सिंडिकेट को अपनी सिफारिशें देगी। यदि सिंडिकेट चयन समिति की सिफारिशों को अस्वीकार कर देता है, तो संबंधित विश्वविद्यालय के कुलपति सिंडिकेट द्वारा दी गई अस्वीकृति के कारणों सहित ऐसी सिफारिशों को कुलाधिपति के विचारार्थ प्रस्तुत करेंगे और उस पर कुलाधिपति का निर्णय अंतिम होगा।

(3) प्रत्येक चयन समिति, जैसा भी मामला हो, शिक्षक या अधिकारी के पद के लिए संबंधित विश्वविद्यालय के प्रासंगिक कानून में निर्धारित योग्यताओं से बंधी होगी।"

14. हम नोट कर सकते हैं कि 1974 के अधिनियम को 1976 के अधिनियम संख्या 24 और 1984 के अधिनियम संख्या 18 द्वारा संशोधित किया गया था और उसके बाद, कई सम्मिलन किए गए थे। 1976 के अधिनियम के अस्तित्व में आने के बाद हमने प्रावधानों को पुनः प्रस्तुत किया है। धारा 4, जो चयन समिति के गठन से संबंधित थी, को 1984 के अधिनियम संख्या 18 द्वारा धारा 5 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया था और धारा 5, जो चयन समिति की प्रक्रिया से संबंधित थी, को 1977

के अधिनियम संख्या 9 और 1984 के अधिनियम संख्या 18 द्वारा संशोधित किया गया था और धारा 6 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया था। उक्त प्रावधान में कुछ संशोधन किए गए थे जिसके द्वारा चयन समिति के लिए आवश्यक कोरम को बदल दिया गया था और 15.11.1984 को उप-धारा (4) जोड़ा गया था।विवेचन के लिए,हम उक्त उपधारा (4) को पुनः प्रस्तुत करते हैं: -

"(4) चयन समिति, उप-धारा (2) के तहत सिंडिकेट को अपनी सिफारिशें करते समय योग्यता के क्रम में इसके द्वारा चुने गए उम्मीदवारों की एक सूची तैयार करेगी और उसी क्रम में और सीमा तक एक आरक्षित सूची तैयार करेगी। शिक्षकों या अधिकारियों के पदों में 50% रिक्तियों के लिए चयन समिति का गठन धारा 5 की उप-धारा (1) के तहत किया गया था और अपनी सिफारिशों के साथ आरक्षित सूची में मुख्य सूची को सिंडिकेट को अग्रेषित करेगी।

15. वर्तमान में, हम प्रासंगिक नियमों का उल्लेख करेंगे। विनियम 2 जो कार्यक्षेत्र और अनुप्रयोग से संबंधित है, इस प्रकार है:-

"रजि. 2 : दायरा और अनुप्रयोग :

i) ये नियम 1.1.1990 को या उसके बाद राजस्थान विश्वविद्यालय की सेवा में नियमित रूप से नियुक्त सभी

व्यक्तियों पर लागू होंगे।

ii) ये नियम उन सभी मौजूदा कर्मचारियों पर भी लागू होंगे - शिक्षण और गैर-शिक्षण दोनों - जो इन नियमों के तहत नियम-4 में निर्दिष्ट अवधि के भीतर पेंशन योजना का विकल्प चुनते हैं।ऐसे कर्मचारियों के मामले में जो निर्दिष्ट अवधि के भीतर विकल्प का चयन नहीं करते हैं, यह माना जाएगा कि संबंधित कर्मचारी ने इन नियमों के तहत पेंशन योजना का विकल्प चुना है।

बशर्ते कि ये नियम इन पर लागू नहीं होंगे:

क) अनुबंध या अंशकालिक आधार पर नियोजित व्यक्ति,

ख) विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्ति पर व्यक्ति।

ग) पूर्णतः अस्थायी और दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी।

घ) पुनः नियोजित पेंशनभोगी।

इस प्रकार, पूर्वोक्त से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि नियम केवल उन व्यक्तियों पर लागू होते हैं जिन्हें नियमित रूप से नियुक्त किया गया है और अनुबंध या अंशकालिक आधार पर नियोजित व्यक्तियों और पूरी तरह से अस्थायी और

दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों को इसमें शामिल नहीं किया गया है।”

16. विनियम 3(5) 'पेंशन फंड' को परिभाषित करता है। यह इस प्रकार है:-

“विनियम 3(5) "पेंशन फंड" का अर्थ है सीपीएफ में विश्वविद्यालय के योगदान की कुल संचित राशि (इसमें से लिए गए ऋण की राशि सहित) और इन विनियमों के शुरू होने की तारीख और मासिक पर ब्याज को स्थानांतरित करने के उद्देश्य से बनाया गया फंड इसके बाद ऐसे कर्मचारियों के संबंध में योगदान किया जाएगा जिन्होंने इन विनियमों के तहत पेंशन योजना का विकल्प चुना है या चुना हुआ माना जाता है। सेवानिवृत्त कर्मचारियों को दी जाने वाली पेंशन इस फंड से ली जाएगी।"

17. विनियम 4 विकल्प के प्रयोग से संबंधित है। उक्त विनियम का प्रासंगिक भाग नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

“विनियम 4: विकल्प का चुनाव करना :

सभी मौजूदा कर्मचारी जो 1.1.1990 को सेवा में थे, उन्हें इन नियमों की अधिसूचना की तारीख से 3 महीने के भीतर इन नियमों के तहत पेंशन योजना के लिए या

मौजूदा सीपीएफ योजना के तहत निरंतरता के लिए लिखित रूप में अपना विकल्प देना होगा और करना होगा। इसे निर्धारित प्रपत्र में वित्त नियंत्रक/वित्त अधिकारी को जमा करना होगा।"

18. ध्यान दें, हालांकि विनियम 4 में तीन प्रावधान हैं, फिर भी उन्हें संदर्भित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे वर्तमान मामले के निर्णय के लिए आवश्यक नहीं हैं।

19. विनियम 22 अर्हकारी सेवा की गणना का प्रावधान करता है। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

"रजि. 22 : अर्हक सेवा की शर्तें:

किसी कर्मचारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होती जब तक वह निम्नलिखित शर्तों के अनुरूप न हो:

1) यह विश्वविद्यालय के अंतर्गत नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारी की सशुल्क सेवा है।

2) रोजगार वास्तविक, अस्थायी या स्थानापन्न क्षमता में है।"

20. प्रतिवादी को पेंशन का लाभ प्रदान करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा विनियम 23 की सहायता ली गई है जो इस प्रकार है: -

“विनियम 23:

क) अस्थायी से स्थायी पद पर स्थानांतरित किए गए कर्मचारी की सेवा को गिना जाएगा, यदि पद पहले प्रयोगात्मक या अस्थायी रूप से बनाया गया था।

ख) किसी कर्मचारी की, बिना किसी मूल नियुक्ति के, उस पद पर स्थानापन्न सेवाएं जो रिक्त है या जिसका स्थायी पदाधिकारी वेतन या गिनती सेवा का कोई हिस्सा नहीं लेता है, उसकी गणना की जाएगी यदि उसकी सेवा में बिना किसी रुकावट के पुष्टि की जाती है।”

21. विनियम 47 पेंशन निधि के निर्माण का प्रावधान करता है। यह इस प्रकार है:-

"विनियम 47: पेंशन फंड का निर्माण:

ऐसे सभी कर्मचारियों के मामले में जो पेंशन योजना का विकल्प चुनते हैं और इन विनियमों के तहत शासित होते हैं, 1 जनवरी 1990 को सीपीएफ में विश्वविद्यालय के योगदान की कुल संचित राशि (इसमें से लिए गए ऋण की राशि सहित) और उस पर ब्याज, इन विनियमों के तहत बनाए गए पेंशन फंड में स्थानांतरित किया जाएगा। इसके बाद, ऐसे सभी कर्मचारियों के संबंध में विश्वविद्यालय का

मासिक योगदान का हिस्सा, जैसा कि ऊपर बताया गया है, हर महीने अगले महीने की 10 तारीख तक पेंशन फंड में जमा किया जाएगा।"

22. अध्ययन की गई जांच में, यह पाया गया कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिनियम की धारा 3(3) और विनियमों पर भरोसा किया है, जिन्हें हमने यहां पुन: प्रस्तुत किया है, कि प्रत्यर्थी नियमित शिक्षक के रूप में व्यवहार किए जाने के हकदार थे और, इसलिए, पेंशन का लाभ देना विश्वविद्यालय के लिए अनिवार्य था। अधिनियम के प्रावधान, जब संयुक्त तरीके से पढ़े जाते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विधायिका ने नियुक्ति पर प्रतिबंध लगाया था, चयन समिति के गठन का प्रावधान किया था और उक्त समितियों की प्रक्रिया भी निर्धारित की थी। विधायिका का इरादा, जैसा कि हमें लगता है, पारदर्शिता, निष्पक्षता, और पूर्ण वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखते हुए, योग्यता के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति करना है। उप-धारा (2) के तहत, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धारा 3 की उप-धारा (3) के तहत व्यवस्था को छोड़कर की गई कोई भी नियुक्ति अमान्य होगी। भाषा स्पष्ट है। धारा 3(3) के तहत जो अपवाद बनाया गया है वह अत्यंत सीमित उद्देश्य के लिए है। यह स्टॉप-गैप व्यवस्था की अनुमति देता है और केवल छोटी अवधि वाले तदर्थ या अंशकालिक शिक्षकों को कवर करता है। इसका उद्देश्य उस स्थिति से निपटने के उद्देश्य को पूरा करना है जहां कोई आपात स्थिति उत्पन्न

होती है। इसका उद्देश्य किसी प्राधिकारी को निर्धारित सीमा से परे कोई भी नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान करना नहीं था। उपरोक्त प्रावधानों की योजना यह दिखाने के लिए काफी हद तक जाती है कि विधायिका ने वास्तव में इस बात का बहुत ध्यान रखा है कि किसी को भी पिछले दरवाजे से प्रवेश न मिले और चयन उचित तरीके से किया जाए। यहां ऊपर बताए गए प्रावधानों का एक उचित योजनाबद्ध विश्लेषण निरंतरता में बने रहने के लिए किसी भी प्रकार की तदर्थ नियुक्ति या अंशकालिक नियुक्ति की परिकल्पना नहीं करता है। जैसा कि मामलों के वर्तमान समूह में तथ्यात्मक चित्रण से पता चलता है, कुछ प्रत्यर्थियों ने कुछ रुकावटों के साथ और न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण भी अपना काम जारी रखा। इसके अलावा, इस न्यायालय ने नियमितीकरण की उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया था। 1997 की विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 3238 और अन्य संबंधित मामलों में जारी किया गया एकमात्र निर्देश यह था कि वे नियमित चयन होने तक सेवा में बने रहेंगे। यह उल्लेखनीय है कि एक नियमित शिक्षक और एक तदर्थ शिक्षक या एक अंशकालिक शिक्षक के बीच प्रावधानों में नियोजित भाषा के कारण एक अंतर किया जाना चाहिए और हम ऐसा करने के लिए बाध्य हैं, जो कभी-कभी आकस्मिक परिस्थितियों के कारण और कभी-कभी न्यायालय के निषेध के कारण,पद पर काम करना जारी रखता है। उनकी प्रारंभिक नियुक्ति को अधिनियम की धारा 3(3) के सीमित उद्देश्यों के लिए कानूनी माना जा सकता है। इससे केवल उसमें निर्धारित

अवधि की सुरक्षा होगी। इसके बाद, उन्हें जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी, क्योंकि यह केवल एक स्टॉप गैप व्यवस्था थी और वैधानिक योजना के तहत ऐसा होना तय था। उसके बाद कानून के संचालन द्वारा उनकी निरंतरता को अधिनियम की धारा 3(2) में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए शून्य और शून्य माना जाना चाहिए।

23. जैसा कि कहा गया है, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए धारा 3(3) पर भरोसा किया है कि, चूंकि वे कानूनी रूप से नियुक्त किए गए थे, वे उमा देवी (सुप्रा) में वर्णित पैराग्राफ 53 के संदर्भ में नियमित होने के हकदार हैं। . इससे पहले कि हम इस प्रश्न से निपटने के लिए आगे बढ़ें कि क्या उमा देवी (सुप्रा) में पैराग्राफ 53 में कुछ कर्मचारियों को दी गई सुरक्षा वर्तमान मामले पर लागू होगी या नहीं, हम क्षेत्र के कुछ निर्णय का उल्लेख करना उचित समझते हैं।

24. कश्मीर विश्वविद्यालय और अन्य बनाम डॉ. मोहम्मद यासीन और अन्य [(4)] मे यह सवाल उठा कि क्या विश्वविद्यालय के अध्यादेश के उल्लंघन में बने एक व्याख्याता की निरंतरता उसे केवल इस आधार पर कोई अधिकार प्रदान करेगी कि वह वास्तव में कार्यालय की वैधानिक समाप्ति के बाद भी जारी रहा था और क्या निहित रोजगार के सिद्धांत को आकर्षित किया जा सकता है। न्यायालय ने शक्तियों और कर्तव्यों और विश्वविद्यालय जैसे वैधानिक निकाय द्वारा वर्गीकरण का उल्लेख करने के बाद, यह माना कि जब चयन समिति ने नियुक्ति के लिए प्रतिवादी पर

विचार नहीं किया था या उसकी सिफारिश नहीं की थी और कोई सुझाव नहीं था कि विश्वविद्यालय परिषद ने प्रत्यार्थी को प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति दी थी, उक्त तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जिस तदर्थ व्यवस्था के द्वारा प्रतिवादी उसमें पढ़ाने के लिए बना रहा, उसे कोई कानूनी वैधता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि कुलपति ने अपनी परिवीक्षा अवधि बढ़ाने की अनियमित प्रक्रिया अपनाई थी। हम उक्त निर्णय से एक शिक्षाप्रद अंश उद्धृत करना उचित समझते हैं:-

> "जब कोई क़ानून एक निकाय बनाता है और उसे अधिकार प्रदान करता है और सीमाओं को निर्दिष्ट करके उसकी शक्तियों को सीमित करता है, तो अधिनियम के तहत प्रावधानों और शक्तियों की निहित संलग्नता का सिद्धांत अधिकारियों की नियुक्तियों के संबंध में वैधानिक योजना के लिए विध्वंसक होगा और इसका समर्थन न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता है। इस मामले में शक्ति केवल विश्वविद्यालय परिषद में निहित की गई है और इसके प्रयोग के तरीके को सावधानीपूर्वक विनियमित किया गया है। इसलिए, प्रतिवादी की नियुक्ति केवल परिषद द्वारा और केवल क़ानून द्वारा निर्धारित तरीके से ही की जा सकती है। यदि कोई कुलपति प्रशासनिक झुकाव से ऐसे रोजगार की अनुमति देता है तो इसे फैक्टम वैलेट के किसी भी सिद्धांत

पर मान्य नहीं किया जा सकता है। हम विश्वविद्यालय परिसर में प्रतिवादी की कथित निरंतरता को कानून की मंजूरी के साथ विश्वविद्यालय के तहत नियमित सेवा के समान नहीं मान सकते। संक्षेप में, प्रतिवादी के पास पद छोड़ने के निर्देश के खिलाफ, कोई प्रस्तुत करने योग्य मामला नहीं है।

25. अनुराधा मुखर्जी (श्रीमती) और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य [5] में, वरिष्ठता के मुद्दे से निपटते समय, इस न्यायालय ने राय दी कि जब किसी कर्मचारी को नियमों के तहत नियुक्त किया जाता है, तो उसे,उसकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से वरिष्ठता नहीं मिलती, लेकिन उस तारीख से जिस दिन उसका वास्तव में चयन किया जाता है और नियमों के अनुसार नियुक्त किया जाता है, से मिलती है।

26. हरियाणा राज्य बनाम हरियाणा पशु चिकित्सा और एएचटीएस एसोसिएशन और अन्य [6] में, हरियाणा इंजीनियरों की सेवा, वर्ग II, लोक निर्माण विभाग (सिंचाई शाखा) नियम, 1970 के तहत नियमित सेवा के मुद्दे से निपटने के दौरान, एक तीन -जज बेंच ने पाया कि उक्त नियमों की योजना के तहत, तदर्थ आधार या स्टॉप-गैप व्यवस्था पर प्रदान की गई सेवा को संशोधित वेतनमान देने के लिए नियमित सेवा नहीं माना जा सकता है।

27. आरएस गर्ग बनाम यूपी राज्य और अन्य [7] में, भर्ती की अवधारणा से निपटते समय, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि अभिव्यक्ति "भर्ती" का अर्थ नियमों के अनुसार भर्ती होगा, न कि नियमों के अनुसार भर्ती करना। यदि कोई नियुक्ति नियमों के विरुद्ध की जाती है, तो वह कानून की नजर में नियुक्ति नहीं है।

28. उमा देवी (सुप्रा) मामले में निर्णय पर वापस आते हुए, संविधान पीठ ने भर्ती प्रक्रिया और नियमितीकरण के दावे से संबंधित क्षेत्र में सभी निर्णयों के सर्वेक्षण के बाद पैराग्राफ 43 में इसे जनता रोज़गार के लिए योजना के अनुरूप माना है।यह न्यायालय का कर्तव्य है की आवश्यक रूप से जब तक नियुक्ति प्रासंगिक नियमों के अनुसार नहीं होती है, तब तक वह नियुक्त व्यक्ति को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगा। खंडपीठ ने आगे कहा कि केवल इसलिए कि एक अस्थायी कर्मचारी या एक आकस्मिक वेतनभोगी कर्मचारी को उसकी नियुक्ति की अवधि से अधिक समय तक जारी रखा जाता है, वह नियमित सेवा में शामिल होने या स्थायी किए जाने का हकदार नहीं होगा, केवल इस आधार पर निरंतरता, यदि मूल नियुक्ति प्रासंगिक नियमों द्वारा परिकल्पित चयन की उचित प्रक्रिया का पालन करके नहीं की गई थी। इतना कहने के बाद, यह आगे फैसला सुनाया गया है कि केवल इसलिए कि एक कर्मचारी न्यायालय के आदेश की आड़ में जारी रहा था, वह सेवा में समाहित होने या स्थायी किए जाने के किसी भी अधिकार का हकदार नहीं होगा।

29. यह ध्यान देने योग्य है कि किसी व्यक्ति के नियमित होने की वैध अपेक्षा से संबंधित विवाद को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा कि जब कोई व्यक्ति अस्थायी रोजगार में प्रवेश करता है या संविदात्मक या आकस्मिक कर्मचारी के रूप में शामिल होता है और शामिल होना, प्रासंगिक नियमों या प्रक्रिया द्वारा मान्यता प्राप्त उचित चयन पर आधारित नहीं होती है एवं वह नियुक्ति के अस्थायी, आकस्मिक या संविदात्मक होने के परिणामों से अवगत है। ऐसा व्यक्ति पद पर स्थायी होने की वैध अपेक्षा के सिद्धांत का सहारा नहीं ले सकता, जबकि पद पर नियुक्ति केवल उचित प्रक्रिया का पालन करके ही की जा सकती है।

30. न्यायालय ने, अंततः, पैराग्राफ 53 में, अनियमित नियुक्तियों के नियमितीकरण से संबंधित कुछ निर्देश जारी किए। हमें लगता है कि उक्त पैराग्राफ से प्रासंगिक भाग को पुनः प्रस्तुत करना उचित है: -

> "एक पहलू को स्पष्ट करने की जरूरत है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अनियमित नियुक्तियां (अवैध नियुक्तियां नहीं) हैं जैसा कि मैसूर राज्य बनाम एसवी नारायणप्पा [(8)], आरएन नंजुंदप्पा बनाम टी. थिम्मैया [(9)] और बीएन नागराजन बनाम कर्नाटक राज्य [(10)] में बताया गया है और इसका उल्लेख किया गया है। उपरोक्त पैरा 15 में, विधिवत स्वीकृत रिक्त पदों पर विधिवत योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की गई होगी और कर्मचारी दस साल या उससे अधिक

समय तक काम करते रहे होंगे, लेकिन अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना। ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर उपरोक्त मामलों में इस न्यायालय द्वारा तय किए गए सिद्धांतों और इस निर्णय के आलोक में गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। उस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों और उनकी संस्थाओं को एक बार के उपाय के रूप में अनियमित रूप से नियुक्त ऐसे लोगों की सेवाओं को नियमित करने के लिए कदम उठाना चाहिए, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, लेकिन कवर के तहत नहीं अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के अनुसार और यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों को भरने के लिए नियमित भर्तियां की जाएं, जिन्हें भरने की आवश्यकता है, ऐसे मामलों में जहां अस्थायी कर्मचारी या दैनिक वेतनभोगी कार्यरत हैं।"

31. उक्त पैराग्राफ में जो कहा गया है उसकी सराहना करने के लिए, निर्णय के पैराग्राफ 15 का संदर्भ लेना अनिवार्य है जिसमें इसे इस प्रकार माना गया है: -

“अंत पर भी, सेवा न्यायशास्त्र में नियमितीकरण और

स्थायित्व प्रदान करने के बीच अंतर को ध्यान में रखना आवश्यक है। मैसूर राज्य बनाम एसवी नारायणप्पा मामले में इस न्यायालय ने कहा कि यह मानना एक गलत धारणा है कि नियमितीकरण का मतलब स्थायित्व है। आरएन नंजुंदप्पा बनाम टी. थिमैया मामले में इस न्यायालय ने इस तर्क पर विचार किया कि नियमितीकरण का मतलब नियुक्ति पर स्थायित्व की गुणवत्ता प्रदान करना होगा। इस न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 416-17, पैरा 26) "प्रतिवादी की ओर से वकील ने तर्क दिया कि नियमितीकरण का मतलब नियुक्ति पर स्थायित्व की गुणवत्ता प्रदान करना होगा, जबकि राज्य की ओर से वकील ने तर्क दिया कि नियमितीकरण का मतलब स्थायित्व नहीं है बल्कि यह अनुच्छेद 309 के तहत नियमों के नियमितीकरण का मामला था । दोनों तर्क भ्रामक हैं। यदि नियुक्ति स्वयं नियमों का उल्लंघन है या संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन है तो अवैधता को नियमित नहीं किया जा सकता है। किसी ऐसे कार्य का अनुसमर्थन या नियमितीकरण संभव है जो प्राधिकरण की शक्ति और प्रांत के भीतर है, लेकिन प्रक्रिया या तरीके के साथ कुछ गैर-अनुपालन हुआ है, जो नियुक्ति की जड़ तक नहीं जाता है।

> नियमितीकरण को भर्ती का माध्यम नहीं कहा जा सकता। इस तरह के प्रस्ताव को स्वीकार करना नियमों की अवहेलना में नियुक्ति का एक नया प्रमुख पेश करना होगा या इसका प्रभाव नियमों को शून्य करने पर पड़ सकता है।"

32. उपरोक्त चित्रण से, यह काफी स्पष्ट है कि संविधान पीठ ने अवैध नियुक्ति और अनियमित नियुक्ति के बीच अंतर किया और उक्त उद्देश्य के लिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, टी. थिमैया (सुप्रा) में पहले के फैसले पर भरोसा किया गया था। जो अनुसमर्थन की शक्ति के बीच अंतर करता है जो प्राधिकरण की शक्ति के भीतर संभव है और प्रक्रिया या तरीके से कुछ गैर-अनुपालन जो नियुक्ति की जड़ तक नहीं जाता है।

33. हमने पहले ही धारा 3 की योजना का विश्लेषण कर लिया है और कहा है कि अधिनियम की धारा 3(3) के तहत प्रदान की गई निश्चित अवधि के बाद सेवा जारी नहीं रखी जा सकती है और ऐसी निरंतरता को अमान्य माना जाएगा। इस प्रकार अधिनियम, क्षेत्र में संचालित होता है। इसके अलावा, नियमित चयन एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति द्वारा किया जाना आवश्यक था, जैसा कि धारा 4 के तहत प्रदान किया गया है। यह भी बताना उचित है कि अधिनियम चयन समिति की प्रक्रिया निर्धारित करता है और इसे नियमों या विनियमों के अनुसार प्रदान करने के लिए किसी भी प्राधिकारी पर नहीं छोड़ता है।

34. उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में अकाट्य निष्कर्ष यह है कि निश्चित अवधि के बाद भी निरंतरता मामले की जड़ तक जाती है। इसके अलावा, शिक्षकों को कुछ अनिवार्य परिस्थितियों में और अदालतों के निषेध के तहत काम जारी रखने की अनुमति दी गई थी। उपरोक्त के अलावा, इस न्यायालय ने नियमितीकरण की प्रार्थना को स्वीकार करने से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया था। ऐसी स्थिति में, हमें डर है कि उमा देवी (सुप्रा) मामले में फैसले के पैराग्राफ 53 पर उच्च न्यायालय द्वारा किया गया भरोसा उचित कहा जा सकता है। इस संबंध में, एक अन्य पहलू, सहायक होते हुए भी, ध्यान देने योग्य हो सकता है। प्रेम लता अग्रवाल और बीके जोशी 31.3.2001 और 31.1.2002 को सेवानिवृत्त हुए थे, और बिना किसी कल्पना के, उमा देवी (सुप्रा) कहती हैं कि सेवानिवृत्त हुए किसी भी श्रेणी के नियुक्त लोगों के मामलों को नियमित किया जा सकता है। हम दोहराने की कीमत पर दोहरा सकते हैं कि उमा देवी (सुप्रा) में पैराग्राफ 53 में दी गई सुरक्षा मूल रूप से तीन कारणों से प्रत्यर्थियों को नहीं दी जा सकती है, अर्थात्, (i) कि निश्चित अवधि के बाद नियुक्ति की निरंतरता शून्य थी और कानून के संचालन से शून्य है; (ii) कि प्रतिवादी न्यायालय के हस्तक्षेप से पद पर बना रहा; और (iii) कि इस न्यायालय ने 1998 में उनकी सेवाओं को नियमित करने से इनकार कर दिया था।

35. यद्यपि हमने वैधानिक योजना पर विचार किया है, फिर भी चूंकि उच्च न्यायालय ने लाभ बढ़ाने के लिए विभिन्न नियमों पर बहुत अधिक

भरोसा किया है, हमें लगता है कि यह पता लगाने के लिए उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर ध्यान देना उचित प्रतीत होता है कि क्या उसने इस उद्देश्य की उचित सराहना और उचित विनियमों का तात्पर्य किया है. उच्च न्यायालय ने, जैसा कि आदेशों से स्पष्ट है, एक स्थायी कर्मचारी और पूरी तरह से अस्थायी नियुक्त व्यक्ति के बीच अंतर किया है और देखा है कि प्रतिवादी की सेवाओं को पूरी तरह से अस्थायी या दैनिक वेतन नहीं कहा जा सकता है। उस संदर्भ में, इसमें विनियम 22 का उल्लेख किया गया है जो "नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारी" शब्दों का उपयोग करता है। हम अनुपातीकरण के उक्त भाग को पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं:-

> “विनियम 2(ii) अनुबंध या अंशकालिक आधार पर नियुक्त व्यक्तियों को छोड़कर सभी मौजूदा कर्मचारियों पर लागू होता है; प्रतिनियुक्ति पर व्यक्ति; पूरी तरह से अस्थायी और दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी; और पुनः नियोजित पेंशनभोगी। याचिकाकर्ताओं का मामला उपरोक्त चार श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत नहीं आता है। अन्यथा भी यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्तियाँ स्टॉप गैप व्यवस्था के तहत की गई थीं। वे दो दशकों से अधिक समय से जारी हैं और इसलिए, उन्हें किसी भी तरह से "विशुद्ध रूप से अस्थायी" नहीं कहा जा सकता है। इसके अलावा विनियम 2(ii)(सी) में निहित शब्द "पूरी तरह से अस्थायी" का

उपयोग दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों वाली कंपनी में किया जाता है और पेंशन योजना के विनियम 2 और 22 में दिए गए अनुसार पूरी तरह से अस्थायी और अस्थायी की अवधारणा में अंतर है, जो पूरी तरह से अस्थायी है, उनको कवर नहीं किया गया है, जबकि अस्थायी या स्थानापन्न नियुक्ति पेंशन विनियमन के दायरे में आती है।”

36. हमारे अनुसार, उपरोक्त विश्लेषण सही नहीं है क्योंकि नियम, नियमित रूप से नियुक्त नहीं किए गए कर्मचारी को अपने दायरे में नहीं लेते हैं। अस्थायी और पूरी तरह से अस्थायी के बीच का अंतर, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया है, स्वीकार्यता की सराहना नहीं करता है क्योंकि इसमें एक अंतर्निहित भ्रांति है क्योंकि विनियम 2(i) स्पष्ट रूप से "विश्वविद्यालय की सेवा में नियमित रूप से नियुक्त" प्रदान करता है, जिसे विनियम 22 में दोहराया गया। वास्तव में, जैसा कि हम समझते हैं, उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा है कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाना चाहिए। एक बार जब यह नियमित सेवा नहीं होती है, तो बुनियादी ढांचा ध्वस्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अधिरचना संस्थापक से बंध जाती है और इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा किया गया भेद त्रुटिपूर्ण है।

37. उच्च न्यायालय ने, जैसा कि पहले कहा गया है, विनियम 23 को लागू किया है और उसी पर भरोसा करते हुए, यह माना है कि

प्रत्यर्थियों की सेवाओं की पुष्टि की गई मानी जाएगी क्योंकि मौजूदा मामलों में विश्वविद्यालय ने कभी भी राय नहीं दी है, कि उनकी सेवाएँ संतोषजनक नहीं थीं। विनियम 23 की भाषा अलग ढंग से दी गई है। यह मूल रूप से किसी कर्मचारी की सेवा अवधि की गणना से संबंधित है। इसके अलावा, विनियम 23(बी) में "यदि उसकी पुष्टि हो गई है" शब्दों का उपयोग किया गया है। यह सशर्त है और इसका संबंध स्थानापन्न सेवाओं से है। सेवा न्यायशास्त्र में दोनों अवधारणाओं का अपना-अपना महत्व है। प्रत्यर्थी स्थानापन्न सेवा में नहीं थे और कल्पना की कोई सीमा नहीं थी कि उनकी पुष्टि मानी जा सकती थी क्योंकि "यदि उनकी पुष्टि की गई है" शब्दों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा एक सकारात्मक तथ्य की आवश्यकता होती है। जैसा कि हमने पाया है, उच्च न्यायालय ने मौजूदा मामले में डीम्ड कन्फर्मेशन के सिद्धांत को लागू किया है जो कि अस्वीकार्य है। इस संदर्भ में, हम, हेड मास्टर, लॉरेंस स्कूल, लवडेल बनाम जयंती रघु और अन्य [11] के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस प्रकार फैसला सुनाया गया है:-

> "एक पुष्टि, जैसा कि नियम में प्रयुक्त भाषा से प्रदर्शित होता है, समय के प्रवाह के साथ नहीं होती है। चूंकि यह एक शर्त से घिरा हुआ है, नियोक्ता द्वारा एक सकारात्मक या सकारात्मक कार्य अपेक्षित है। हमारी सुविचारित राय में, पुष्टिकरण का आदेश पारित किया जाना आवश्यक है।" इस

प्रकार विश्लेषण करने पर, उच्च न्यायालय का निष्कर्ष जो नियमों की व्याख्या पर भी आधारित है, स्वीकार्यता के योग्य नहीं है।"

38. परिणामस्वरूप, अपीलें स्वीकार की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया जाता है। हालाँकि, यदि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में अपील में किसी भी प्रत्यर्थी को किसी भी कीमत पर कोई राशि का भुगतान किया गया है, तो उसे किसी भी कीमत पर वसूल नहीं किया जाएगा। खर्चे के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

आर.पी.

अपीलें स्वीकार की गई।

(1) ए.आई.आर. 1977 एससी 2051

(2) (1983) 1 एससीसी 305

(3) (2006) 4 एससीसी 1

(4) (1974) 3 एससीसी 546

(5) (1996) 9 एससीसी 59

(6) (2000) 8 एससीसी 4

(7) (2006) 6 एससीसी 430

(8) (1967) 1 एससीआर 128

(9) (1972) 1 एससीसी 409

(10) (1979) 4 एससीसी 507

(11) (2012) 4 एससीसी 793

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से न्यायिक अधिकारी श्री आशीष बैंदाड़ा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है ।

अस्वीकरण- इस निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

*****